P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-2* ISSUE-10* January- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

अथर्ववेद में पर्यावरण संरक्षण

प्रिया तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर,
समाज शास्त्र विभाग,
हे0नं0ब0राज0स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
नैनी, इलाहाबाद

सारांश

मानव और प्रकृति का सम्बन्ध सबसे महत्वपूर्ण और आदिकाल से ही है। आज से हजारों वर्ष पूर्व से ही मनुष्य प्रकृति को ईश्वर मानता रहा है, मनुष्य जल, वायु, अग्नि, सूर्य, वर्षा, पेड़—पौधों तथा जीवों की पूजा करता आया है। प्रकृति पूजा अर्थात् प्रकृति के विभिन्न तत्वों की पूजा से अभिप्राय प्रकृति की महत्ता को स्वीकार करते हुए जीव व मानव कल्याण की कामना करना था। जैसे—जैसे सभ्यता का विकास होता गया मनुष्य के जीवन—यापन के तौर—तरीकों में परिवर्तन होता गया और प्रकृति एवं इससे जुड़े विभिन्न तत्वों को मनुष्य अपने अधिकार क्षेत्र में मानने लगा। वह पृथ्वी के संसाधनों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के अतिरिक्त संसाधनों का बड़े पैमाने पर दोहन करना भी प्रारम्भ कर दिया, इसका मुख्य कारण मानव समाज की बढ़ती हुई आबादी एवं उसके भरण—पोषण की समस्या रही, मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने के साथ ही साथ प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करके मानव समाज के लिए अनेक पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न कर दी।

मानव और प्रकृति के बीच तालमेल न बैठ पाने के परिणामस्वरूप प्रदूषण, प्राकृतिक एवं मानवकृत आपदायें, विश्व जलवायु परिवर्तन, पेयजल संकट, जैव विविधता का ह्रास, ओजोन परत का ह्रास, भूक्षरण हिमनदों का पिघलना, समुद्री जल स्तर में वृद्धि आदि प्राकृतिक समस्याओं की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार की विश्वस्तरीय एवं स्थानीय समस्याओं के कारण सम्पूर्ण विश्व के वैज्ञानिकों, पर्यावरण विशेषज्ञों एवं नियोजनकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित हुआ है। इन समस्याओं के समाधान के लिए न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपितु विश्व स्तर पर पर्यावरण एवं सुरक्षित पर्यावरण की अवधारणा का जन्म हुआ।[1]

हमारे भारतीय समाज में प्रारम्भ से ही पर्यावरण संरक्षण की बात की गयी है। अथर्ववेद के सबसे प्रथम मंत्र में ही इस बात को स्पष्ट कर दिया है।

ये त्रिसप्ता परियन्ति विश्व रूपणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला त्रेषां अधां दधातु में।।

विश्व में दिखलाई देने वाले समस्त रूपों को धारण करके जो तीन गुणा सात अर्थात इक्कीस पदार्थ सर्वत्र व्याप्त है उनको शरीर के बल वाणी का स्वामी आज मुझे देवें।

यह समस्त जगत सात मूल पदार्थो से बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, तन्मात्रा और अहंकार।

अथर्ववेद में समस्त पदार्थो की स्तुति की गयी है और इनके गुणों की व्याख्या करते हुए, इनको जीवन का मूल मानते हुए इनके संरक्षण की बात की गयी है।

मुख्य शब्द : नदियाँ, अग्नि, वायु, वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, संस्कृति, वेद, पुराण, औषधि।

प्रस्तावना

''अग्निजातो अर्थर्वाणा विद्द विश्वानि काव्य।''[3] (ऋग्वेद 10—21—5)

वेद ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार है। संसाद में जितना भी ज्ञान, विज्ञान, विधाएं और कलाएं दृष्टिगोचर हो रही है, उन सबका मूल भेद में विद्यमान है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रकृति कभी अपना नियम नहीं तोड़ती और यदि प्रकृति नही रही तो समाज का भी अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। हमारा शरीर भी जिन पांच तत्वों से बना है वह पर्यावरण द्वारा प्रदत्त है और यह नभ, अग्नि, वायु, जल हम जिनसे बने हैं बाद में इसी में मिल जाना है। समाजशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते हमारा दायित्व है कि हम पर्यावरण की प्रकृति को समझे और इसको समझने में हमको यह देखना पड़ेगा कि हमारे वेदों, उपनिषदों में प्रकृति के बारे में क्या कहा गया है और हम इससे क्या सीखते हैं। एल्बर्ट आइन्सटाइन का कथन है

''प्रकृति में गहराई से देखिए और आप हर एक चीज बेहतर ढंग से समझेंगे।'' इसी को ध्यान में रखकर यह अध्ययन किया गया है।

मानव जीवन बहुमुखी होता है, आत्मज्ञान, नीति, आचार, चरित्र सम्बन्धी ज्ञान, नाना प्रकार की विधाओं और कलाओं का ज्ञान ही मनुष्यों को मानव नाम का कलाओं का बना सकता है। इसी उद्देश्य से मानवीय सभ्यता के प्रारम्भ में ईश्वरीय ज्ञान के दृष्टा ऋषियों ने जीवनोपयोगी समस्त ज्ञान को वेदों में संकलित किया गया है।

यह समस्त जगत सात मूल पदार्थो से बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, तन्मात्रा और अहंकार। ये सात पदार्थ ही न्यूनाधिक परिमाण में सम्मिलित होकर संसार की प्रत्येक वस्तु को एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं।

अम्बयो यन्त्यध्वभि जामयो अध्वरीयताम।
प्रंचतीर्मधुना पयः।।[4] यज्ञकर्ता

माता और बहन के समान जल को अपने मार्गो से लेकर यज्ञ में लाने की बात करते हैं। सूर्य जिस जल के साथ रहता है तथा सूर्य मण्डल में स्थित वह जल हमारे यज्ञ को सफलता प्रदान करने की शक्ति सम्पन्न करें। मैं जल अधिष्ठाता देवता का आह्वान करता हूँ जहाँ जलपूर्ण नदी, तालाबों में हमारी गाये जल पीती है। जल अमृत और औषधियों से परिपूर्ण है। इसके इन दित्य गुणों से हमारे घोड़े और गाये बलवान तथा शक्ति सम्पन्न बने।

'स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्। एवं हि देव वन्दितो हंता दस्योर्बभूविथ।।[5]

यज्ञकर्ता अग्नि से कहते हैं अग्ने! जिस देवता की हम स्तुति कर रहे हैं हमारे छवि से प्रसन्न उन देवता को हमारे पास ले आओ। राक्षसों, डाकुओं आदि को आप नष्ट कर देते हो इसलिए इन्हें अपने पास बुलाओ। आप हमारे इच्छित प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिए उत्पन्न हुए इसलिए राक्षसों को दूर हटाइये।

अस्य देवाः प्रदिशी ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरूत वा हिरण्यम्।[6]

हे देवताओं इस पुरूष में सूर्यः, अग्नि, इन्द्र, स्वर्ण आदि की ज्योति पूर्ण रूप में रहे।

'अयं देवानामसुरो विराजीत वसाहि सत्या वरूणस्य राज्ञः। ततस्परि ब्रह्मणा राशदान उग्रस्य मन्योरूदिमे नयामि।।[7]

देवो में वरूण पापियो को दण्ड देने वाले है सबके नियामक होने से वरूण देव प्रकाशित है, हे तेजोमय वरूण, आपके क्रोध, सकल प्राणियों में क्रोधि को आप भली प्रकार जानते हो। मैं एक साथ ही दूसरे अहस्त्रो अपराधी पुरूष को भेजता हूँ, आपके कृपा से यह मनुष्य आपका बनकर ही सौ वर्ष तक जीवित रहे। (सूक्त 12, 20)

जरायुजः प्रथम उस्त्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्टया। ए नो मृडाति तन्वऋजुगो रूजन य एकमोजस्त्रेधा विधक्रमे।।[8]

ये सूर्य हमें त्रिदोष–जनित रोगों से मुक्त करे, सीधे चलने वाले सूर्य जो एक होकर भी तीव्र कार से प्रकाशित होते हैं। हमारे शरीर को सुख दे। हम स्तुति, हवि आदि से आपको पूजते हैं।

नमस्ते अस्तु विधते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना टूडाशे अस्यसि।।[9]

दमकती हुई विद्युत को मेरा प्रणाम पहुँचे। विद्युत की गड़गड़ाहटकारी ध्वनि तथा अग्नि को मेरा प्रणाम पहुंचे।

हे ओज तू घृत के समान शारीरिक स्थिति अष्टम दशा है तू मुझे ओज प्रदान कर, मैं तुम्हारे लिए हवि देता हूँ।[10]

हे वायु! तु अन्तरिक्ष मं घूमते हो। तुम अपनी पीड़ा शक्ति को शत्रु के प्रति प्रयुक्त करो। हमसे द्वेष करने वाले कृत्यकारी को संताप देने वाले हो।[11]

हे चन्द्र जो शत्रु हमसे द्वेष करता है अथवा जिसके प्रति हम द्वेष रखते है और जो शत्रु हम पर कृत्यादि अभिचार करना चाहता है उस शत्रु को अपनी सन्तापन शक्ति द्वारा सन्तप्त करो।[12]

हे गौओ/अर्यमा, पूषा, इन्द्र, बृहस्पति तुम्हें उत्पन्न करे, फिर तुम अपने क्षीर, घृत आदि के द्वारा मुझ साधक को तुष्ट करो।[13] (तृतीय काण्ड, सूक्त 14, 102)

हे सोयपर्णोत्पन्न पताश! तू औषधियों में श्रेष्ठ है अन्य वृक्ष तेरे अनुगत है जो शत्रु हमको क्षीण करना चाहता है वह शत्रु तेरी कृपा से क्षीण हो जाये।[14] (षष्ठं काण्ड, सूक्त 15, 264)

हे सरसो! तू रोग नष्ट करने के लिए खाया जाता है, तेरा तेज महान बल वाला है।[15]

हिमालय से पाप नाशक गंगा आदि का जल प्रवाहित होता है वह समुद्र में संयुक्त होते हैं। वह जल मुझे ऐसी औषधियाँ प्राप्त कराये जो हृदय के दाह का शमन करने में समर्थ हो। यह जल रोग दूर करने वाली औषधियों में परम कुशल चिकित्सक है।

मरूत देवता हमको पुत्रादि प्रजा और धन प्रदान करें। पूषा, ब्रह्मणस्पति और अग्नि देवता भी हमको सुसन्तति और धन से पूर्ण कर हमें दीर्घायु करे।[16] (सप्तम काण्ड, सूक्त 33, 367)

निम्न सूत्रों के द्वारा यह परिलक्षि होता है कि वैदिक काल में पर्यावरण के विभिन्न अंगो को अलग–अलग ईश्वर का प्रतीक मानकार मनुष्य से जोड़कर देखा गया। पर्यावरण संरक्षण की और उसके द्वारा मानव कल्याण की बात की गयी है।

जिस तरह अष्टमकाण्ड के सूक्त 7 में कहा गया है कि विभिनन वर्ण और विभिन्न आकार वाली औषधियों के सामने उपस्थित होकर रोग नष्ट करने की प्रार्थना करते है। आकाश जिनका पिता, पृथ्वी जिनकी माता तथा समुद्र मूल है, वे औषधियाँ यक्ष्मा रोग से रक्षा करें। वीरूधो का मूल, अग्र भाग, मध्य भाग, पत्रे, पुष्प और फल आदि सभी मधुर होते है जो इस मधु का सेवन करता है वह अमृत का सेवन करता है।

महर्षि अंगिरा द्वारा कहा गया– ''वे सब औषधियाँ मेरे अभिप्राय को जानकर मुझे इस योग्य करें कि मैं इस पुरूष को रोग रूपी पाप से मुक्त कर सकूँ।

भूमिका

पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तत्वों से इसकी रचना हुई है। वस्तुतः पर्यावरण प्राकृतिक

दशाओं एवं शक्तियों से निर्मित एक साकार सांस्कृतिक स्वरूप है, जिसका प्रभाव मानव एवं उसकी क्रियाओं पर पड़ता है।

यज्ञ की अग्नि में आहूति देता हुआ वैदिक ऋषि समस्त जीवों की शांति व सुख हेतु वन, वृक्ष, पशु,–पक्षियों, पुष्प, जीव–जगत इत्यादि प्रकृति के प्रत्येक कण की मंगल कामना करता हुआ यज्ञ में आहूतियां देता है।

"चराचरेभ्यः स्वाहा सृपेभ्य स्वाहा।
मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा
पुष्पेभ्य स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा।।"[17]

प्राचीन भारतीय वाग्ङमय एवं अरण्यक संस्कृति में प्रकृति के प्रति आदर का भाव निहित था। वृक्षों, वनस्पतियों, नदियों, जलाशय, आकाश, अग्नि, वायु एवं अन्तरिक्ष आदि में देवत्व की प्रतिष्ठा की गयी है। प्रकृति के प्रति पूज्य भाव के कारण उसका निर्गम दोहन प्रायः निषिद्ध था। यही कारण है कि पीपल के वृक्ष को देवताओं का घर कहा गया है।

'अष्वत्थो देव सदनः[18]

भारतीय संस्कृति की आत्मा प्रकृति है यह तथ्य हमारे प्राचीन धार्मिक एवं पौराणिक ग्रन्थों में श्रद्धापूर्वक वर्णित है तथा उसमें संकेत किया गया है कि प्रकृति के साथ अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। भारतीय संस्कृति से ओत–प्रोत हमारे ऋषि महर्षि प्रकृति कुछ प्राप्त करने के पूर्व करने के पूर्व उसकी वन्दना करते थे।

पर्यावरण शुद्धिकरण में यज्ञ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यज्ञ में आहूत की जाने वाली घृत समिधाएं, मिष्ट, कस्तूरी, सुगंधित आदि पदार्थ भूमि, जल, वायु, आदि के विभिन्न व्याधियों को दूर करते है।

वेद हमारी संस्कृति में प्रमुख स्थान रखते तथा वेदों में पर्यावरण को अतिविशिष्ट स्थान दिया गया है। वेदों में जो प्रकृति चित्रण किया गया है, वह उस समय की लोक परम्पराओं को जीवंत चित्र न उस समय प्रकृति की पूजा को प्रमुख स्थान दिया गया है। वैदिक साहित्य में, नदी, कुंआं, तालाब वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, आकाश एवं अग्नि आदि (पंच महाभूत) उपनिषदों में मानव जीवन से सम्बन्धित 16 संस्कारों का वर्णन है। प्रत्येक संस्कार की पूजन विधि में प्रकृति के साथ तारतम्यता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। पूजा में प्रकृति प्राप्त वस्तुओं का ही उपयोग किये जाने का प्रावधान है यथा दूध, केले के पत्ती, आम्रपत्र, चावल, हल्दी, रोली, पान सुपारी तथा सरपत इत्यादि।

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम्
मय्यग्रे अग्निं गृहणामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन
मीय प्रजां मय्ययुर्दधामि स्वाहा मर्य्याग्नम्[19]

अथर्ववेद में वर्णित गौओं के बारे में कहा गया है– हे गौओं। सुन्दर स्तुतियों के योग्य अग्नि की पूजा करो। हममें मंगलमय धनों को प्रतिष्ठित करो इस यज्ञ में अग्नि आदि देवताओं को लाओ। घृत की मधुर धाराएं उन देवताओं को प्राप्त हो इसी तरह वरूण की महिमा की गयी है, जलों में जो असाधारण सुवर्णमय गृह है वह अन्य किसी को नहीं मिल सकता। हे वरूण, हममें स्थापित अपने घरों में छोड़ दे। मरूत के बारे में कहा गया है कि मारूत देवता हमको पुत्रादि प्रजा और धन प्रदान करें। पूषा ब्रह्मणस्पति और अग्नि देवता भी हमको सुसन्तति और धन धान्य से पूर्ण कर हमें दीर्घायु करें। जौ के बारे में कहा गया है– हे जौ, तू उत्पन्न होकर ऊँचा हो। तू अनेक प्रकार से बढ़कर पात्रों को भर दे। वृक्ष के बारे में कहा गया है कि शमी वृक्ष पर अग्नि रूप पुत्र उत्पन्न करने के लिए पीपल वृक्ष चढ़ा है। उस पीपल से अरणियां लाई जाती है। हम पुत्रोत्पत्ति के निमित स्त्रियों में कर्म सम्पादित करते है। पीपल व शमी के जिस कर्म से पुत्र प्राप्ति होती है, वह पुसवन कर्म को अवश्य प्राप्त कराता है। पलाश का वर्णन करते हुए कहा गया है– हे सोमपर्णोत्पन्न पलाश। तू औधधियों में श्रेष्ठ है। अन्य वृक्ष तेरे अनुगत है। जो हमको क्षीण करना चाहता है वह शत्रु तेरी कृपा से क्षीण हो जाय जो सगोत्र वाला या अन्य गोत्र वाला शत्रु हमको क्षीण करना चाहता है, उन दोनों प्रकार से शत्रुओं में पलाश के समान श्रेष्ठ होऊँ। जैसे पलाष उत्तम माना जाता है जैसे अन्य औषधियों की अपेक्षा सोम को पुरोडाशादि में प्रयुक्त किया जाता है वैसे ही सगोत्रियों में श्रेष्ठ होऊँ। सरसों के बारे में बताया गया है कि सरसों तू रोग नष्ट करने के लिए खाया जाता है, तेरा तेज महान बल वाला है। उस तेज में भूने हुए शाक को हम अभिमंत्रित करके सेवन करते है। हे सरसो के शाक। तेरा पिता विहल्ह और माता मदावती नाम की है। तू अपने पत्र आदि शरीर को मनुष्यों के खाने के लिए दे देता है, इसलिए माता–पिता के समान नहीं रहता। तू रोग की कारणभूत है। अतः हमारे रोग को पराजित कर लौटा दे। गंगा का वर्णन करते हुए कहा गया है–

हिमतव प्र स्वन्ति सिन्धौ समह सङ्गम आपो,
मह्यं तद् देवीर्ददन् हृदयघोतभेषजम्।[20]

नेत्रों को, पाषाणि को और प्रपद को सन्ताप देने वाले सब रोगों को देवता के समान जल मिटा दें। यह जल रोग दूर करने वाली औषधियों में परम कुशल चिकित्सक है। हे जलों। तुम्हारा स्वामी समुद्र है, तुम उसकी पत्नी हो। तुम रोगों को दूर करने वाली औषधि प्रदान करो। जिससे हम सन्नादि बल देने वाले पदार्थों का सेवन करने में समर्थ हो। नेत्रों को पाषाण को और प्रपद को सन्ताप देने वाले सब रोगों को देवता के समान जल मिटा दें। यह जल रोग दूर करने वाली औषधियों में परम कुशल चिकित्सक है। दुर्भ (कुशा) का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह दुर्भ अपनी जाति के अथवा शत्रु के क्रोध को नष्ट करने में समर्थ हुआ सामने खड़ा है। क्रोधी पर कारण वश क्रोध नष्ट करने वाले के क्रोध को मिटाने में भी यह प्रयोग एक उपाय रूप है। यह कूशा बहुत जड़ो वाला तथा अधिक जल वाले भू–भाग को दबाकर खड़ा है। पृथ्वी से अन्तरिक्ष की ओर उठा हुआ यह दर्भ क्रोध शांत करते हैं और क्रोधावेश में मुख पर प्रकट होने वाली नस को भी शांत करते हैं। मैं तेरे क्रोध को दबाकर पराधीन करता हुआ तुझे अपने अनुकूल करता हूँ। इस रोग को दूर करने वाली औषधि को मैं प्रयोग करूंगा। यह रूद्र की औषधि अन्तकाल में सबको रूलाती है। इसका शिव ने प्रयोग किया था। हे परिचारकों। तुम गोमूत्र के फेन जल से घाव को धोओ। बैल की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गाड़ी को खींचने वाला बैल

जोतने और भार ढोने के कर्म द्वारा पृथ्वी का पोषण करता है। वरण नामक वृक्ष उत्पन्न करने वाली वरणावति का जल हमारे विष को दूर हटावे। इसके जल में लोक में स्थित अमृत का स्वरूप विद्यमान है उस अमृत मय जल के द्वारा कन्दादि से उत्पन्न तेरे विष को हटाने की प्रार्थना की गयी है। तक्षक सर्प ब्राह्मण है। इनके दश फन और दश मुख है। उन्होंने क्षत्रियों में प्रथम होने के कारण आकाशस्थ सोम का पान किया। सोम पीने वाले ब्राह्मण कन्दमूल फल से उत्पन्न इस विष को निष्प्रभाव करें।

पाठा नामक औषधि सौत को बाधा डालने वाली है तथा जो औषधि स्त्री को पति प्राप्त कराने वाली है उस परम शक्तिशाली औषधि की वन्दना की गयी है। जल की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हे जलों। मेघ के ताड़ित करने पर इधर–उधर चलकर नाद करने के कारण तुम्हारा नाम नदी हुआ है और तुम्होरे अप, उदक नाम भी अर्थ के अनुकूल ही है। वरूण द्वारा प्रेरित होने पर तुम नृत्य करने से एकत्र करने लगे थे इसी से इसका नाम अप हुआ।

वैदिक ऋषियों ने आज से हजारों साल पहले इस समस्या के निराकरण का सूत्र हमें दिया था जिसका अनुपालन करने से यह समस्या आज भयानक रूप नहीं ले पाती। इस वेद में ऋषि ने हमें बहुत पहले आगाह कर दिया था कि पृथ्वी माँ का अत्यधिक दोहन न करो और यदि करो तो उसकी पूर्ति किसी न किसी रूप में अवश्य करना चाहिए। इसमें कहा गया है कि पृथ्वी के जितने भाग को खोदा जाए उसे तुरन्त भर देना चाहिए। ऐसी खुदाई नहीं करनी चाहिए कि उसके मर्मस्थल एवं हृदय को आघात पहुंचे।

यत्ते भूमे विश्वनामि, क्षिप्रं तदपि रोहतु
मा ते मर्म विभृग्वारि मा ते हृदयमर्पितम्।

निष्कर्ष

प्रकृति द्वारा एक तरफ तो हमें कई नायाब उपहार मिले हैं वही दूसरी तरफ यदि हमने उसका ठीक ढंग से उपयोग नहीं किया तो हमें बहुत नुकसान उठाना पड़ सकता है। प्राकृतिक आपदाओं के लिए हम तरह–तरह के प्रबन्धन करते हैं लेकिन इतनी बड़ी आपदाओं के प्रबन्धन के साथ हमें कुछ अलग माध्यम भी चुनना पड़ेगा। प्रेम एक ऐसा शब्द है जिससे सब कुछ वश में किया जा सकता है अगर हमें प्रकृति के साथ रहना है तो हमें प्रकृति का आह्वान करना होगा। ऋगवेद में तत्वदर्शी महर्षियों के द्वारा वायु, जल आदि की शुद्धता के लिए प्रार्थना की गयी है। हमें भी सबके साथ मिलकर प्रकृति के प्रत्येक तत्व की आराधना करनी चाहिए और वेदों में जिस तरह से संरक्षण की बात की गयी है उसी मार्ग को अपनाना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पर्यावरण प्रबन्धन एवं शिक्षा, विजार्ड, पृष्ठ 189*
2. *प्रथम खण्ड, सूक्त 1, पृष्ठ 9*
3. *ऋग्वेद 10–21–5*
4. *प्रथम खण्ड, सूक्त 4, पृष्ठ 12*
5. *प्रथम खण्ड, सूक्त 7, पृष्ठ 14*
6. *प्रथम खण्ड, सूक्त 7, पृष्ठ 17*
7. *प्रथम खण्ड, सूक्त 10, पृष्ठ 18*
8. *प्रथम खण्ड, सूक्त 12, पृष्ठ 20*
9. *प्रथम खण्ड, सूक्त 13, पृष्ठ 21*
10. *प्रथम खण्ड, सूक्त 17, पृष्ठ 62*
11. *प्रथम खण्ड, सूक्त 20, पृष्ठ 64*
12. *प्रथम खण्ड, सूक्त 22, पृष्ठ 65*
13. *तृतीय काण्डा, सूक्त 14 पृष्ठ 102*
14. *षष्ठं काण्ड, सूक्त 15, पृष्ठ 264*
15. *षष्ठं काण्डा, सूक्त 16, पृष्ठ 265*
16. *सप्तम काण्डा, सूक्त 33, पृष्ठ 367*
17. *प्रसाद जी एवं अर नौटियाल–पर्यावरण भूगोल 2006, पृष्ठ 301*
18. *शुक्ल पुराण यजुर्वेद 22/29*
19. *शुक्ल पुराण यजुर्वेद 22/28*
20. *अथर्ववेद 5/4/3*